फ़ितने के दौर में
हम क्या करें

लेखक :
ख़ुर्रम मुराद रह0

अनुवाद :
डॉ० रफ़ीक अहमद

सूरह कहफ़ का गहरा ताल्लुक़ फ़ितना–ए–दज्जाल से है। प्रमाणित हदीसों से साबित है कि जो शख्स जुमे के दिन सूरह कहफ पढ़ेगा वह दज्जाल के फ़ितने से महफ़ूज़ रहेगा। कुछ हदीसों में शुरु की दस आयतें और कुछ में आख़िरी दस आयतों की तिलावत का ज़िक्र है।

दज्जाल के विषय पर बहुत सी प्रमाणित हदीसें हैं, इन हदीसों से जो बातें खुल कर सामने आती हैं, उनमें तीन बातें अहम हैं। पहली यह है कि वह कुफ़्र और खुदा से इन्कार का खुल कर एलान करेगा, उसी की तरफ़ दावत देगा, और खुदाई का दावा भी करेगा। दूसरी बात जो इन हदीसों से साबित होती है, वह यह है कि उसको फ़ितरत और क़ुदरत की ताक़तों में बेपनाह क़ाबू हासिल होगा। पहली बात हदीसों में इस तरह बयान हुई है कि उसके

माथे पर क, फ़, र ''कुफ़्र'' साफ-साफ लिखा होगा। दूसरी बात हदीसों में मुख़्तलिफ़ अन्दाज़ में इस तरह बयान हुई है कि उसकी आवाज़ पूरब और पश्चिम में सुनाई देगी। वह बरसों का सफ़र और फ़ासला घन्टों और मिनटों में तय करेगा। बारिश भी बरसायेगा और खेती भी उगाएगा, और खेती और काश्तकारी की मिक़्दार भी बेहद बढ़ा देगा। तीसरी बात जो मुख़्तलिफ़ अन्दाज़ में बयान हुई है, वह यह है कि उसका असर बहुत ही आश्चर्य में डाल देने वाला होगा। उसको हदीस में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया गया है कि आदमी सुबह मोमिन होगा तो शाम को काफिर हो जाएगा। साथ ही यह भी बयान किया गया है कि उस वक़्त ईमान के रास्ते पर चलना बड़ा दुश्वार और कुफ़्र के रास्ते पर चलना बड़ा आसान होगा। उसके साथ एक जन्नत होगी, जिसने उसका साथ दिया, उसकी ज़िन्दगी जन्नत की ज़िन्दगी होगी, और जिसने उसका साथ न दिया, उसकी ज़िन्दगी जहन्नम की ज़िन्दगी होगी।

यह उन ख़ुसुसियात का खुलासा है। इन हदीसों को देखकर हमारे दौर के कुछ लोगों ने यह कहा कि दज्जाल किसी शख़्स का नाम नहीं है बल्कि दरअसल एक पूरी तहज़ीब और संस्कृति का नाम है, और पश्चिमी सभ्यता अपनी ख़ुसुसियात के लिहाज़ से वो ख़ुसुसियात अपने अन्दर रखती है, जिनका ज़िक्र इन हदीसों में किया गया है।

मेरे ख्याल में यह राय नासमझी पर आधारित है। हदीसों में और ज़्यादा स्पषट और वज़ाहत के साथ एक शख्स का ज़िक्र मौजूद है और उसी के साथ इन सारी चीज़ों को वाबस्ता किया गया है। इन्सान की यह ख़्वाहिश होती है कि क़ुरआन और हदीस को इस तरह मायने व मतलब पहनाए कि वह उसकी समझ और इल्म पर पूरे उतर आयें, बजाए इसके कि वह क़ुरआन को समझने के लिये अपनी अक़्ल और इल्म को इस्तेमाल करे। हमारा ईमान और यक़ीन है कि क़ुरआन मजीद हर दौर के लिये है, और नबी सल्ल० ने जिन अल्फ़ाज़ में दज्जाल के फ़ितने से सचेत किया, वह बड़े सख्त हैं। आप सल्ल० ने कहा हर नबी ने अपनी उम्मत को एक फ़ितना से सचेत किया, और मैं भी करता हूँ एक दुआ में जो आप सल्ल० अकसर माँगते थे।

व अऊज़ुबिका मिन फितनतिल मसीहिदज्जाल के अल्फ़ाज़ भी शामिल हैं।

इस मसले को समझने के लिये मैं उन दोनों के दरम्यान राह निकालता हूँ। वह यह कि वह हदीसें जिन का ताल्लुक़ सूरह कहफ़ में दज्जाल के फ़ितने से क़ायम किया गया है, वह भी अपनी जगह सही और बरहक़ हैं। यह हर ज़माने के लिये रहनुमा हैं। सिर्फ आज ही के लिये या जबसे

क़ुरआन नाज़िल हुआ है या आज से 15 सौ साल बाद के लिये ही नहीं हैं, बल्कि जब तक इन्सानियत रहेगी क़ुरआन का यह हिस्सा उसी तरीक़े से रोशनी और हिदायत का स्रोत होगा, जिस तरह वाक़ई उस ज़माने होगा, जबकि दज्जाल की शखसीयत ज़ाहिर हो जायेगी इस लिहाज़ से मैं दो चीज़ों में फ़र्क़ करता हूँ एक दज्जाल की शखसीयत दूसरा उसके फ़ित्ने की खुसुसियात मेरे ख्याल में दज्जाल के फितने की खुसुसियात हर दौर में किसी न किसी रुप में मौजूद रही हैं और आज हमारे दौर में भी, अगर नज़र डालें तो वह मौजूद हैं। आज भी इन्सान खुद अपना खुदा बना हुआ है। उसने इस बात का खुल कर एलान किया है, कि खुदा को इन्सान के मामलात में दख़ल देने की ज़रुरत नहीं है। इन्सान का इख्तियार, फ़ितरत की ताक़तों पर रोज़ बरोज़ बढ़ता चला जा रहा है और तेज़ी के साथ बढ़ता चला जा रहा है। असर छोड़ने और प्रभावित करने के जो संसाधन आज पैदा हो गये हैं वह वाक़ई इन्सान के ज़ेहन और ईमान पर बड़ी गहरी और आश्चर्य में डाल देने वाली तब्दीली पैदा कर देते हैं। और यह कैफ़ियत नज़र आती है कि आदमी आज कुछ होता है और कल कुछ।

इस लिहाज़ से अगर हम सूरह कहफ़ का अध्ययन करें तो शुरु से लेकर आखिर तक उसकी हर आयत हमको अपने दौर में हिदायत की एक खास रोशनी देती हुयी नज़र आयेगी। मैंने इस सूरह के दरम्यान से कुछ

आयतों का चयन किया है, जिन में एक मुकम्मल नुस्खा पेश किया गया है। अगर उसको आदमी पकड़ ले, तो वह फ़ितने की उन तमाम खुसुसियात से अपने आपको सुरक्षित रख सकता है, जिनका ज़िक्र सही और प्रमाणित हदीसों में किया गया है।

''और तिलावत करो उस चीज़ की जो उतारी गयी है तुम्हारी तरफ़ तुम्हारे रब की तरफ से। उस अल्लाह के क़लिमात को बदलने वाली कोई चीज़ नहीं है और तुम हरगिज़ कोई पनाह की जगह न पाओगे उसके अलावा और अपने दिल को उन लोगों के साथ और सोहबत पर मुत्मइन करो जो अपने रब की रिज़ा के तलबगार बन कर सुबह व शाम उसे पुकारते हैं, और उनसे हरगिज़ निगाह न फेरो। क्या तुम दुनिया की ज़ीनत को पसन्द करते हो? किसी ऐसे शख़्स की इताअत न करो, जिसके दिल को हमने अपनी याद से ग़ाफिल कर दिया है और जिसने अपनी ख्वाहिश नफ़्स की पैरवी इख्तियार कर ली है और जिसका तरीक़े कार कमी और ज़्यादती पर आधारित है। साफ़ कह दो कि यह हक़ है तुम्हारे रब की तरफ से अब जिसका जी चाहे मान ले और जिसका जी चाहे इन्कार कर दे।

इस सारे हिस्से का खुलासा अगर मैं बयान करना चाहूँ तो वह क़ुरआन, उख़ूवत (भाईचारगी का ताल्लुक़) और दावत।

इस हिस्से के अन्दर यह तीन उसूल बयान हुये हैं, जिसने इन तीनों को मज़बूती से साथ थाम लिया यानी अल्लाह की किताब, मोमिन बन्दों साथ उख़ूवत का ताल्लुक़ और हक़ की दावत का जाम। यह दर असल वह नुस्खा है जो आदमी को हर दौर में उन फ़ितनों से सुरक्षित रख सकता है जो दज्जाल की तरह उसके ईमान के पीछे पड़े हुये हैं।

आइये हम उनमें से हर एक को अलग अलग देखें कि क़ुरआन उनके बारे में क्या कह रहा है, और उनमें से हर एक की हमारे लिये क्या अहमियत हो सकती है, और किस तरह हम उनको मज़बूती के साथ थाम कर अपनी तर्बियत और शखसीयत का निर्माण कर सकते हैं।

1– क़ुरआन से ताल्लुक़ :

पहला उसूल क़ुरआन से सही ताल्लुक़ है। फ़रमाया :

''और तिलावत करो उस चीज़ की जो वही की गयी है तुम्हारी तरफ़ तुम्हारे रब की तरफ़ से।'' (18:27)

यानी तिलावत करो उस चीज़ की जिसकी वही तुम्हारी तरफ़ की गयी है कि जो इस किताब में मौजूद है,

जो तुम्हारे रब की तरफ से आयी है। ज़ाहिर है कि इससे तात्पर्य क़ुरआन है जो इस वक़्त हमारे हाथों में है, जो हमारे घरों के अन्दर भी मौजूद है, और जिसके बारे में हमारा ईमान है कि अल्लाह की तरफ़ से नाज़िल हुआ है।

तिलावत के मायने सिर्फ पढ़ने के नहीं हैं, इसके लिये अरबी में क़िरअत का लफ़्ज़ आया है। तिलावत का लफ़्ज़ अपने अन्दर व्यापक अर्थ रखता है। अरबी ज़बान में दर असल यह लफ़्ज़ एक चीज़ के पीछे दूसरी चीज़ के चलने के लिये इस्तेमाल होता है। चूँकि क़िरअत में अल्फ़ाज़ एक के बाद दूसरे आते हैं, इसलिये तिलावत का लफ्ज़ पढ़ने के माएनों में भी इस्तेमाल होने लगा। लेकिन .क़ुरआन मजीद में मुख्तलिफ़ जगह पर तिलावत का लफ्ज़ जिस अन्दाज़ में आया है, उससे मालूम होता है कि ज़बान से पढ़ना, उसको समझना, उसको अपने अन्दर जज़्ब करना, उसका प्रसार करना, उसके ऊपर अमल करना, यह सारे भाव उसके अन्दर शामिल हैं। गोया हमारी शखसीयत, हमारे दिमाग़, हमारे दिल, हमारी रुह और हमारे अमल का एक मज़बूत रिश्ता और ताल्लुक़ इस किताब के साथ होना चाहिये जो अल्लाह की तरफ़ से उतारी गई है। यह सबसे पहली चीज़ है। इसलिये कि अंधेरा कितना ही गहरा क्यों न हो, रोशनी का यह स्रोत

हमेशा मौजूद रहेगा, और ठीक उसी तरह रहेगा जैसा कि आज से 14 सौ साल पहले था।

इस किताब के साथ दिल व दिमाग़ और ज़ेहन का रिश्ता मज़बूत बांधे बग़ैर हम में से कोई उसका ख्वाब नहीं देख सकता, न देखना चाहिये कि वह अपनी तरबियत कर सकता है, अपने आपको बेहतर बना सकता है, या दावते दीन का काम कर सकता है। कोई काम नहीं हो सकता, जब तक अल्लाह की किताब के साथ ताल्लुक़ मज़बूत न हो। यह वह किताब है जिसने अपने श्रोताओं को बदला, उनके दिल व दिमाग़ को बदला, उनकी ज़िन्दगी को बदला, उनके मक़ासिद और हौसलों को बदला, ज़िन्दगी का धारा पलट दिया और बिल आखिर उनको दुनिया में क़ायद और रहनुमा बना दिया। इस किताब ने उनका ईमान मज़बूत किया, और उनके दिलों के अन्दर उतारा और उनके आपसी रिश्तों को मज़बूत किया। उनके अन्दर इताअत, पैरवी और वफ़ादारी की ख़ूबियां पैदा कीं और उनको एक मज़बूत गिरोह बना कर खड़ा कर दिया। आज भी अगर कोई यह काम कर सकता है तो सिर्फ़ यही किताब है। बाहर के बाहर की दुनिया चाहे कितना ही हमको घेरे में लिये हुए हो, अगर इस किताब के साथ हमारा अपना तिलावत का ताल्लुक़ मज़बूत हो तो कोई वजह नहीं कि अंधेरा रोशनी में बदल न सके।

क़ुरआन मजीद के बारे में कहा गया है कि यह ऐसी किताब है जिसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। उसमें आगे और पीछे से कोई असत्य दाखिल नहीं हो सकता। दज्जाल तो जब आयेगा सो आयेगा लेकिन दज्जाल के पीछे चलने वाले अपनी तरफ़ से कितनी भी कोशिश करें कि ईमान के क़िले के अन्दर सूराख़ कर दें, अगर इस किताब के ज़रिये इहाता क़ायम किया गया हो तो उसमें सूराख़ की कोई गुन्जाइश नहीं होती। इसीलिये फ़रमाया गया है :

''हक़ीक़त यह है कि एक ज़बरदस्त किताब है, बातिल न सामने से उस पर आ सकता है न पीछे से, यह एक हकीम व हमीद की नाज़िल की हुयी चीज़ है।''

(हा मीम अल सज्दा 41–42)

यह किताब सारे खज़ानों से बेहतर खज़ाना है। दुनिया के अन्दर आदमी जो कुछ भी सोचे कि मैं यह जमा करुगां और वह हासिल करुगां और जितने भी उसके हौसलें हों और जितनी भी चीज़ों के साथ वह क़ीमत और क़द्र को वाबस्ता करता हो कि यह मेरे लिये क़ीमती है, इन सबसे बेहतर अगर कोई चीज़ है तो अल्लाह की किताब है।

''यह उन सब चीज़ों से बेहतर है जिन्हें लोग समेट रहे हैं।'' (यूनुस 10 : 58)

यह उन सारी बिमारियों का इलाज है जो आदमी के दिल के अन्दर पाये जाते हैं। यह शिफ़ा है, नुस्खा-ए-शिफ़ा है और उन सारी बीमारियों का इलाज जो हमारे दिल के अन्दर हैं।

''यह वह चीज़ है जो दिलों की बिमारियों की शिफ़ा है।'' (यूनुस 10 : 57)

इसी के अन्दर वह नूर और रोशनी है जो आदमी के दिल के अन्दर और उसके बाहर की ज़िन्दगी, दोनों को रोशन करती है।

इस किताब की बहुत सी खुसुसियात ख़ुद इस किताब के अन्दर बयान हुयी हैं। हां यह बात बिल्कुल स्पष्ट रुप से बयान हुयी है कि जब तक आदमी अपने आप को उसके हवाले न करे, उसके ऊपर ईमान न लाये, अपने आपको उसके आगे डाल न दे और उसके साथ अपना मज़बूत ताल्लुक़ क़ायम न करे उस वक्त तक यह किताब उसको नफ़ा नहीं पहुंचा सकती।

क़ुरआन ने अपने उन पाठकों की दिली कैफ़ीयतें भी बयान की हैं जिन्होंने ख़ुद क़ुरआन मजीद को नबी करीम सल्ल० से सुना उसको जज़्ब किया उस पर अमल किया और उसके अधीन हो गये, वह कैफ़ीयतें ज़ाहिर करती हैं कि उनकी शख्सियत का कितना गहरा ताल्लुक़ क़ुरआन के साथ था। उसका नारा सिर्फ ज़बान पर नहीं

था बल्कि उसकी जगह दिल के अन्दर थी, और कैफियत यह थी कि जब क़ुरआन की आयत पढ़ी जाती थीं तो उनको अपना ईमान बढ़ता हुआ महसूस होता था। उनका दिल पिघल जाता था, आँखों से आँसू बहने लगते थे, खाल नरम पड़ जाती थी और रौंगटे खड़े हो जाते थे।

यह .कुरआन का खुद अपना बयान है, किसी बाहर के लेखकों की कहानिया नहीं हैं। क़ुरआन ने खुद बताया है कि उसको पढ़ने और सुनने वालों पर क्या कैफ़ीयत तारी होती थी। यह सारी कैफ़ीयत लफ्ज़ तिलावत के अन्दर शामिल हैं, अगर उसका अध्ययन उसी तरह किया जाए जिस तरह करना चाहिये।

उस अल्लाह के कलिमों को बदलने वाली कोई चीज़ नहीं है और तुम हरगिज़ कोई पनाह लेने की जगह न पाओगे इसके अलावा। (18 : 27)

जब हर तरफ़ से बातिल का हमला हो, झूठे फ़ितने, झूठे फ़लसफ़े, झूठे नज़रिये और झूठे विचार आदमी को घेरे हुये हों, और मुख्तलिफ़ तरीक़ों से आदमी के अन्दर घुसने की कोशिश कर रहे हों, ऐसे में एक ही पनाह की जगह है और वह है क़ुरआन! जिस तरह बच्चा माँ की गोद में जाकर सर डाल देता है और समझता कि अब वह हर ख़तरे से सुरक्षित है, इसी तरह अगर आदमी अपनी शख्सियत, अपने दिल, अपनी रुह को क़ुरआन की

गोद में लाकर डाल दे तो फिर इन सब दुश्मनों से सुरक्षित हो जाता है जो चारों तरफ़ से उसके ईमान और दिल पर हमलावर हो रहे हैं।

यहाँ एक और बात खास तौर से कही गयी है : ला मुबद्दिला लिकलिमातिही ''उस अल्लाह के कलिमों को बदलने वाली कोई चीज़ नहीं है।'' उसकी अहमियत हर ज़माने में क़ुरआन के पढ़ने वालो ने महसूस की होगी। चूँकि आज हम बीसवीं सदी में इस क़ुरआन को पढ़ रहे हैं, इसलिये जब हम अपनी अक़्ल और इल्म के मुताबिक़ उस पर ग़ौर करते हैं तो हमें उसके अन्दर बड़ा आश्चर्य युक्त नक्शा नज़र आता है। यह अध्ययन हम एक ऐसी दुनिया में कर रहे हैं जिसमें किसी चीज़ का ठहराव नही है, न आदमी के ख़्यालात को क़रार है, न उसके नज़रियों और फ़लसफ़ों को, न तरीक़े इलाज को, जो अपनी बीमारियों के लिये ढूढता फिरता है, यहाँ तक कि उसके कपड़ों के फैशन तक को ठहराव नहीं है जो सुबह व शाम बदलते रहते हैं। यानी निरन्तर एक बदलाव का अमल है जो जारी है। पश्चिमी विचारकों ने बार-बार इसका इक़रार किया है कि पिछले 50 सालों में जितनी तेज़ी से यह हैरत अंगेज़ तबदीलियां इन्सान के ख़्यालात और नज़रियात में आयी हैं, इसकी कोई मिसाल इन्सानी तारीख में नहीं मिलती। हद यह कि साइंस के वह नज़रियात और हक़ायक़ जिनको

सदियों से इन्सान सच जान कर उन पर यक़ीन रखता रहा, और जिन पर वह अपना दीन व ईमान भी क़ुर्बान करता रहा, वह ख़ुद अपनी जगह बदल गये और बराबर बदलते चले जा रहे हैं। आज जिसकी नज़र दुनिया के फ़लसफ़ों, नज़रियों, साइंस और आज की पूरी सोसायटी पर है, वह जानता है कि आज की सदी का एक ही इम्तेयाज़ी निशान है, और वह है उसके बदलाव की रफ्तार जो लगातार पेश आ रही है। इसी लिये इन्सान को ठहराव नहीं है। वह आज कल किसी चीज़ पर जम कर नहीं बैठ सकता। किसी पर अपना लन्गर नहीं डाल सकता।

इन हालात में यह फ़रमाया गया कि यह वह किताब है जिसको बदलने वाली कोई क़ूव्वत और ताक़त नहीं है। ज़माने के असर से या किसी शोध और रिसर्च से उसके अन्दर कोई तब्दीली नहीं हो सकती। इसलिये यह अल्लाह तआला का कलाम है, उसकी तरफ से आया है, उसने उसको उतारा है और उसी की किताब है। उसने इन्सानी समस्याओं का वह फ़ितरी और स्थाई हल पेश किया है जिस पर ज़माने का चक्र असर अन्दाज़ होकर किसी बदलाव और तब्दीली का कारण नहीं हो सकता। फिल हक़ीक़त यही वह किताब है अगर आज आदमी इस चट्टान पर अपना लन्गर डाल दे तो उसकी कश्ती हर भंवर और हर तूफ़ान से सुरक्षित रह सकती है।

क़ुरआन में बयान किया गया है कि फ़ितने के ज़माने में आदमी को मज़बूती के साथ क़ुरआन का दामन थामना चाहिये, क़ुरआन की तिलावत करना चाहिये, और क़ुरआन को इस तरह पढ़ना चाहिये जिस तरह पढ़ने का हक़ है। इसलिये कि यही वह किताब है जो ज़माने की सारी तबदीलियों के बावजूद ठहराव, जमाव और इस्तेक़लाल का नमूना है और जिसकी गोद में पनाह और सुकून मिल सकता है। सिर्फ़ यही किताब है जो सारे फ़ितनों और मुसीबतों से सुरक्षित रख सकती है।

यह वह क़ीमती हिदायतें हैं जिनको हमें पल्ले बांध कर अपनी ज़िन्दगी में से कुछ वक़्त हर हाल में इस किताब से वाबस्ता रखना चाहिये। उसको दिल व दिमाग़ के अन्दर उतारना चाहिये और उसको अपना रहनुमा और पनाह की जगह बनाना चाहिये।

2– अल्लाह वालों की संगत व सोहबत :

फ़ितनों से बचने के लिये दूसरा उसूल उख़ूवत यानी भाई जैसा ताल्लुक़ हो। इस उसूल में वह बातें हैं। एक यह कि कैसे लोगों से ताल्लुक़ रखा जाए, और दूसरा यह कि किनसे ताल्लुक़ न रखा जाए और दूरी बनाए जाए। सबसे पहले अल्लाह वालों की संगत व सोहबत और उनसे ताल्लुक़ के लिये हिदायत दी गयी है। फ़रमायाः

''बांध लो अपने आपको उनके साथ जो पुकारते हैं अपने रब को सुबह व शाम, और जो तालिब हैं उसके चेहरे के।'' (18 : 28)

यहाँ सब्र का लफ्ज़ इस्तेमाल हुआ है और सब्र के मायने अरबी ज़बान में बुनियादी तौर पर बांधने और थामने के हैं। यहाँ यह लफ्ज़ ख़ास मायनों में इस्तेमाल हुआ है जिसका बाद में तज़किरा किया जाएगा। फ़िलहाल मैं यहाँ ''वसबिर'' के लिये ताल्लुक़ का लफ़्ज़ इस्तेमाल कर रहा हूँ कि अपना ताल्लुक़ तलाश करके, ढूढ के, उन लोगों के साथ क़ायम करो जो अपने रब को सुबह शाम पुकारते हैं। रब के साथ ताल्लुक़ के लिये क़ुरआन ने दो लफ़्ज़ इस्तेमाल किये हैं, एक लफ़्ज़ इबादत और बन्दगी का है ''याबुदून'', दूसरा लफ़्ज़ पुकारने और बुलाने का है ''यदऊन'', अकसर जगह इन अल्फ़ाज़ को एक दूसरे की जगह बदल कर भी इस्तेमाल किया गया है। यानी इबादत और दुआ एक दूसरे के हम मायने हैं और उनके दरम्यान एक गहरा ताल्लुक़ है।

इबादत तो यह है कि आदमी अपनी पूरी शख्सियत के साथ, शदीद मुहब्बत और लगाव के साथ, उस ज़ात की परसतिश (पूजा) करे जिसको अपना रब मानता है। ऐसा मुम्किन है कि आदमी इबादत के अन्दर व्यस्त हो, और उसके बावजूद उसका अपने रब के साथ दुआ का ताल्लुक़

क़ायम न हो। बहुत सारे लोग आपको कहते नज़र आयेंगे कि हम अल्लाह की मुहब्बत में इतने फ़ना हैं कि हमको न उससे किसी चीज़ के मांगने की ज़रुरत है, न हमको दोज़ख की ज़रुरत है न जन्नत की। दरअसल वह दुआ की अहमियत को नहीं समझ पाते। दर हक़ीक़त इबादत और दुआ का बड़ा गहरा ताल्लुक़ है। हदीस में है कि दुआ इबादत का मग़ज़ है, यह फ़िल वाक़ेए अल्लाह को पुकारना है। दुआ के लफ़्ज़ के अन्दर क्या एसी ताबीर है जिसकी वजह से क़ुरआन ने उसको इबादत का मग्ज़ क़रार दिया, यह पहलू ग़ौर तलब है। क़ुरआन व हदीस में इबादत के साथ-साथ इस्तेआनत यानी मदद माँगने का लफ़्ज़ भी इस्तेमाल हुआ है। ''इय्याकनबुदु वइय्याकनसतईन'' (अल फ़ातेहा 1 : 4) ''हम तेरी ही इबादत करते हैं और तुझ ही से मदद माँगते हैं'' लिहाज़ा इबादत के तक़ाज़ों में से एक अहम तक़ाज़ा यह है कि अल्लाह तआला के साथ इस्तेआनत का, मदद माँगने का, पुकारने का ताल्लुक़ क़ायम हो।

इस दौर में, जबकि इन्सान अपनी सरकशी, उदन्डता और क़ूव्वत के सबब अपनी ताक़त, साइंस और टेक्नालोजी पर नाज़ करता है, ऐसे में हिदायत दी जा रही है कि उन लोगों को तलाश करके, उनके साथ रिश्ता क़ायम करके एक सोसायटी बनाओ जो अपने रब को पुकारते और उसकी तरफ़ बुलाते हैं।

अगर आप ग़ौर करें तो बुलाने और पुकारने में कई चीज़ें छुपी हुयी हैं।

पहली चीज़ यह है कि आदमी उसी को पुकारता और बुलाता है जिसके बारे में उसे यह यक़ीन हो कि उसके पास वह क़ूव्वत और ताक़त है कि मेरी मदद कर सकता है। यानी जब तक अल्लाह की क़ूव्वत और इल्म का यक़ीन न हो उस वक्त तक अल्लाह तआला के साथ दुआ का ताल्लुक़ क़ायम नहीं हो सकता।

दूसरी चीज़ यह कि वह सुनता भी है और जवाब भी देता है, यानी यह ताल्लुक़ किसी ऐसी हस्ती के साथ नहीं है जो बहुत ऊपर आसमानों पर बैठी हुयी है जिसके आगे आदमी केवल सज्दा करे और उसकी इताअत करले।

दर हक़ीक़त आदमी उसी को पुकारता और बुलाता है जिसके बारे में उसको पूरा यक़ीन और एहसास होता है कि वह हस्ती उसकी पुकार सुन रही है। जैसा कि उसने वादा किया है।

''और ऐ नबी सल्ल० मेरे बन्दे अगर तुमसे मेरे बारे में पूछें तो उन्हें बता दो कि मैं उनसे क़रीब ही हूँ।'' (अल बक़रा 2 : 186)

''मुझे पुकारो मैं तुम्हारी दुआऐं क़ुबूल करुंगा (अल मोमिन 40 : 60)

यानी दुआ के अन्दर यह अक़ीदा और यक़ीन शामिल है कि वह ज़ात रहमत के साथ मुतवज्जा होती है, सुनती है और दुआ क़ुबूल करती है।

अपनी बन्दगी और अपने फ़िक्र, अपनी फ़क़ीरी, और अपनी बेबसी का एहसास भी उसका एक पहलू है। यह भी बुलाने और पुकारने के अन्दर शामिल है। यह सब चीज़ें मिलकर मोहताजी और ग़ुरबत और बेबसी और बन्दगी का ताल्लुक़ उस हस्ती के साथ क़ायम करती हैं जो क़ादिर भी है और अलीम भी, रहीम भी है और सुनने वाली और देखने वाली भी।

बन्दे और रब के दरम्यान दुआ का जो ताल्लुक़ है उसके एक खास पहलू को बड़ी वज़ाहत के साथ नुमायां करता है। फ़िर फ़रमायाः

जो अपने रब को सुबह शाम पुकारते हैं। (18:28)

सुबह व शाम के दो मायने हैं। एक तो वह जो वाक़ई सुबह व शाम होती है। अगर इन मायनों में हम उसको लेंगे तो उसके मायने नमाज़ के हो जायेगें। इसलिये कि नमाज़ ही वह चीज़ है जिसके अन्दर आदमी सुबह व शाम वक्ते मुक़र्रर पर अल्लाह को पुकारता है। उसके एक दूसरे मायने भी हैं। जिस तरह हम मुहावरे में इस्तेमाल करते हैं कि वह रात दिन यह काम करता है, या सुबह से

लेकर शाम तक उसी के अन्दर व्यस्त रहता है, यानी उसमें हमेशगी, और हमेशा डरने के मायने भी शामिल हैं। यानी उन लोगों को तलाश करो जो एक तरफ तो हर काम में अल्लाह को याद करते हैं, और फिर जो काम अल्लाह ने खुद आयद कर दिये हैं, यानी सुबह व शाम और नमाज़ों के वक़्त अल्लाह को याद करते और पुकारते हैं। और उन लोगों को भी तलाश किया जाए जिनका अपने रब के साथ ताल्लुक़ इस तरह क़ायम होता है कि हर लम्हे उनको उसकी क़ुदरत का एहसास, और अपनी फ़क़ीरी बेबसी और मोहताजी का एहसास रहता है।

जो तालिब हैं उसके चेहरे के। (18 : 28)

यहाँ पुकारने का मक़सद और जो असल मतलूब है उसकी निशानदही की गयी है। ऐसे तो हर चीज़ अल्लाह ही से माँगना चाहिये और माँगने का हुक्म है। यहाँ तक कि एक हदीस में यह भी फ़रमाया गया है कि जूते का तसमा यानी फ़ीता भी अगर चाहिये तो अल्लाह से ही माँगो।

दर हक़ीक़त सबसे बड़ी और अहम चीज़ उसकी निगाहे तवज्जो और उसी की रहमत है। यह वह चीज़ जिसकी तरफ़ यहाँ इशारा किया गया है। निगाह और चेहरा, दर असल यह अल्फ़ाज़ खुशनूदी, रहमत और तवज्जो के लिये इस्तेमाल होते हैं। तवज्जो का लफ़्ज़ ''वज्ह'' से

निकला है, जिसके मायने हैं चेहरा। यानी अल्लाह के चेहरे की तलाश के यह मायने हुऐ कि उसकी निगाहे रहमत और करम व रिज़ा मतलूब व मक़सूद हो और मुसलसल उसी चीज़ पर निगाह जमी रहे और फिर अल्लाह की तवज्जो भी शामिल हो।

दर असल यह उनकी ख्वाहिश होती है लेकिन यहाँ पर लफ्ज़ ''मुरीदूना'' इस्तेमाल हुआ है। ''यर बुदून'' के मायने इरादा करने के हैं। इरादे का लफ्ज़ ख्वाहिश के लफ्ज़ से कुछ आगे का है। चाहना अलग चीज़ है, तलाश अलग, और इरादा अलग। इरादे के मायने के अन्दर अज़्म और फ़ैसला भी शामिल होता है। यही वजह है कि सिलसिला-ए-तसव्वुफ़ में सूफ़िया उस शख्स के लिये जो उनके साथ चलने या उनकी राह पर चलने का इरादा करता है, ''मुरीद'' का लफ्ज़ इस्तेमाल करते हैं, जो इरादे से निकला है, यानी उसने इस बात का फ़ैसला कर लिया कि वह इस रास्ते पर चलेगा। गोया उनकी ज़िन्दगी का मक़सूद और उनकी तवज्जो का मर्कज़ यह है कि वह अपने रब को तलाश करें उसकी रज़ा तलाश करे, उसकी अपनी तरफ मुतवज्जा करें और सुबह व शाम हर वक्त उसको याद रखें। उसकी साथ अपना ताल्लुक़ क़ायम करें, जो उनका रब, मालिक और परवरिश करने वाला है।

क़ुरआन ने इन आयतों में ताल्लुक़ के लिये जो लफ्ज़ इस्तेमाल किया है, वह सब्र है। यह बड़ा अजीब लफ्ज़ है, और बड़े अजीब ढ़ंग से आया है। अरबी ज़बान में :‘रब्त’’ का लफ्ज़ भी इस्तेमाल होता है, और मुहब्बत के लिये भी इस्तेमाल हो सकता है कि मुहब्बत करो, लेकिन यहाँ ‘‘सब्र’’ का लफ्ज़ इस्तेमाल हुआ है। मेरे ख्याल में उसके अन्दर भी एक खास मायने छुपे हैं और वह यह हैं कि दर असल ताल्लुक़ तो है ही यह कि एक इन्सान दूसरे इन्सान का हाथ थामे और अपने रब की रिज़ा की तलाश की राह पर चले। इस ताल्लुक़ के लिये संकल्प और दृढ़ता की ज़रुरत है। यह ऐसा ताल्लुक़ कि जिसके नतीजे में एक फ़र्द को बहुत सारी मुसीबतों और खतरों का सामना होता है। अगर आदमी इस बात के लिये तैयार न हो कि सब्र भी करेगा तो मुहब्बत और उख़ूवत का ताल्लुक़ क़ायम नहीं रह सकता। दो इन्सान जब मिल कर साथ चलेंगे तो ऐसी बातों का पेश आना जो नागवारे खातिर हो लाज़मी है। इसलिये हदीसे नबवी सल्ल० में उस आदमी की तारीफ़ की गयी है कि जो लोगों के साथ मिलजुल कर रहता है, और अगर उसमें उसको कोई तकलीफ़ पहुँचती है तो उस पर सब्र करता है। मेरी राय में क़ुरआन ने यहाँ पर सब्र का लफ्ज़ इस ताल्लुक़, की मज़बूती और पायदारी और इस राह में जो नागवार चीज़ें

पेश आने वाली हैं, उनके मुक़ाबले में सब्र के साथ क़ायम रहना, इन सब मायनों में इस्तेमाल किया है।

एक तरफ़ तो यह फ़रमाया गया कि अपना ताल्लुक़ इख़्लास के साथ ऐसे लोगों के साथ बांधो। यह बात इसलिये ज़रुरी है कि आदमी अकेला उसका तसव्वुर नहीं कर सकता कि वह फ़ितनों के तूफ़ान के अन्दर राहे हक़ पर खड़ा रह सकता है। इसके लिये ज़रुरी है कि दूसरे इन्सानों की मदद और हिमायत हासिल हो। यह इन्सानी फ़ितरत की ख़ुसुसियत है कि जब एक से एक मिलकर दो इन्सान हो जाते हैं तो मुख़ालिफ़ क़ूव्वतों का मुक़ाबला करने लिये और अपने काम की तरक्क़ी और विकास के लिये भी, उनमें से हर एक की क़ूव्वत के अन्दर बेपनाह इज़ाफ़ा हो जाता है। इसी को बाज़ लोगों ने यहाँ तक कहा कि इन्सान इज्तिमाई हैवान यानी सामाजिक प्राणी है, वह अकेला ज़िन्दगी बसर नही कर सकता। यह तो अलग-अलग फ़लसफ़ें हैं, हमें उनमें जाने की ज़रुरत नहीं है। असल बात यह है और हमारा तज्रिबा भी है, और उस पर फ़ितरत भी गवाह है कि जब भी इन्सान मिलकर एक रास्ते पर चलते हैं या मन्ज़िल की तरफ़ पेश क़दमी करते हैं और ताल्लुक़ को बांधते हैं, तो वह मुसबत (Positive) तौर पर भी और मन्फ़ी (Negative) तौर पर भी अपने विकास,

तरबियत और तज़किया के लिये भी और उन फ़ितनों का मुक़ाबला करने के लिये भी लाज़मन उनकी क़ूव्वत के अन्दर बेपनाह इज़ाफ़ा हो जाता है। लेकिन उसके बाद फ़रमाया गया है।

''और उनसे हरगिज़ निगाह न फेरो।'' (18 : 28)

यानी तुम्हारी आँखें इधर उधर न दौड़ें। दर असल जब आदमी फ़ितने के माहौल के अन्दर घिरा हुआ हो, जहाँ राहे हक़ पर चलने वाले और हक़ के राही बहुत थोड़े हों, वहाँ हर वह आदमी बड़ा क़ीमती है जो हाथ में हाथ देकर उस राह पर आगे बढ़े जो अपने रब की खुशी तलाश कर रहा हो, जो उसको सुबह व शाम तलाश करता हो। उसकी क़द्र व क़ीमत का एहसास इतना होना चाहिये कि आदमी की निगाह न फ़िसले, न बहके न अटके, बल्कि उन्हीं लोगों के अन्दर रहे, चाहे उनका हुलिया और लिबास कैसा ही हो, उनका रहन-सहन कैसा हो, और दुनियावी मर्तबा कैसा ही क्यों न हो। उसकी निगाहें उन पर जम जायें कि यह मेरे भाई हैं। यह मेरे रफ़ीक़, दोस्त और साथी हैं। यह मेरे मददगार हैं, और मुझे अपने आप को उन्हीं के साथ बांध कर रखना है। अकेला आदमी तरबियत, दावते हक़ और मैदाने जंग को इसके बग़ैर सर नहीं कर सकता।

निगाह अपने साथियों से क्यों हटती है, और क्यों आदमी इधर उधर दोस्तियां और रिश्ते तलाश करता फ़िरता है? उसको भी इस आयत के अन्दर वाज़ेह और साफ तौर पर बयान कर दिया गया है :

''क्या तुम दुनिया की ज़ीनत को पसन्द करते हो?

(18 :28)

यह हक़ीक़त है कि दुनिया की ज़ीनत और दुनिया की रौनक़ में ही इन्सान के ताल्लुक़ात प्रभावित होते हैं। अगर आप उसको आज की ज़बान में अदा करना चाहें तो यूँ कह सकते हैं कि मेयारे ज़िन्दगी को ऊँचे से ऊँचा करने की धुन सवार होना है। जब कोई शख़्स दुनिया तलबी के पीछे पड़ता है, और दुनिया तलबी के अन्दर सिर्फ़ माल व दौलत ही शामिल नहीं है बल्कि इज़्ज़त और शुहरत, मुक़ाम और तारीफ़ जिसको सोशियोलाजी की ज़बान में स्टेटस कहा जा सकता है। यह सारी चीज़ें उसके अन्दर शामिल हैं तो अपने साथ चलने वाले साथी की अहमियत निगाहों में कम हो जाती है, वह उनको नज़र अन्दाज़ करना शुरु कर देता है। निगाहें उनसे हट कर कहीं और फैलना शुरु हो जाती हैं।

हर आदमी की फ़ितरत कि वह पैरवी और इत्तेबाअ के लिये नमूने और माडॅल तलाश करता है। अगर आप अपने बचपन की ज़िन्दगी से ले कर अब तक ग़ौर करें और

अपनी नफ़्सियात और एहसासात का कभी जायज़ा लें तो आप देखेगें कि जो अफ़राद आपके सामने मुख़्तलिफ़ अन्दाज़ में चलते फिरते आऐं, कोई आपको पसन्द आया और कोई ना पसन्द, और जो पसन्द आया आप के दिल में हमेशा यह ख्वाहिश होती है कि किसी के पास अगर रोल्स रायस (मंहगी कार) दिखाई दी तो दिल चाहा कि मेरे पास भी होती, कोई बड़ा अच्छा सूट पहन कर आया, बड़ी अच्छी बात करता है, दिल चाहा कि हम भी ऐसे हों। कोई नज़र आया और एहसास हुआ कि हम ऐसे न हों। इस तरह मुख़्तलिफ़ माडॅल अखज़ करके आदमी अपने ज़हन में जमा करता रहता है। कुछ माडॅल अपील करते हैं वह उनके पीछे चलता है और कुछ को वह रद करता है कि मैं उनके पीछे न जाऊँ। क़ुरआन ने भी यहाँ हिदायत दी कि तुम्हारी निगाह दुनिया की ज़ीनत ही में अटक कर न रह जाए। जिनकी ज़िन्दगियां, मेयारे ज़िन्दगी बुलन्द करने में व्यस्त हों उनको अपना माडॅल न बनाओ और उनके पीछे अपने साथियों को न छोड़ो कि जो खस्ता हाल हों, माली तौर पर बोल चाल में मुख़्तलिफ चीज़ों में स्टेटस में कम हों बल्कि अपने आप को उनके साथ जमा कर रखो। तुम्हारी अपनी तरबियत, दावत, जिहाद, दुनिया में ग़लबे की सारी राहें सब उसी जमाअत की क़ूव्वत में

पोशीदा हैं जो जमाअत इस आपस में जुड़ कर एक दूसरे के साथ वजूद में आती हैं।

अल्लाह तआला ने यहाँ तीन चीज़ों को ज़िक्र किया जो उस माडॅल की खुसूसियात को नुमायां करती हैं जो दुनिया को मतलूब बना कर उसके पीछे दौड़ने वालों का होता है आज भी अगर आप देखेगें तो दुनिया का फितना मौजूद है और हमेशा ही रहेगा। क़ुरआन ने भी शुरु ही से इसका ज़िक्र किया है। मैं यह नहीं कहता कि यह आज के साथ मखसूस है। चूँकि मेरी निगाह में आज की दुनिया है, इसलिये मैं उसको उस ज़माने में पाता हूँ कि इन्सान की सारी भागदौड़ का मर्कज़ सिर्फ दुनिया होकर रह गयी है। खास तौर पर पश्चिमी सभ्यता में इसको बड़ी बुरी तरह इन्सान के दिमाग़ में बिठाया गया कि अफ़राद के लिये क़ौमों के लिये अगर दुनिया में कोई मन्ज़िल है वह दुनयवी तरक़्क़ी और मेयारे ज़िन्दगी है, वह सियासत के अन्दर बढ़ता है फैक्ट्रियों और कारखानों को क़ायम करता है। यह इन्सान के लिये ज़िन्दगी के बेहतर से बेहतर मेयार हैं। मकान बेहतर हो, कार और लिबास बेहतर हो..... यह वह चीज़ें हैं जिन पर इन्सान की तरक़्क़ी और विकास का पूरा नमूना क़ायम होता है। हम में से कोई अपने आपको कितना ही बचाये यह ख़्यालात मुख़्तलिफ अन्दाज़ और पैराये में हमारे अन्दर भी घुसते हैं। अगर हम चाहें तो

अपने चारों तरफ़ देख सकते हैं। इसका हल यही है कि आदमी उस जमाअत से जुड़ा है जो बेहतर नमूने के हामिल अफ़राद और हर काम में अल्लाह को याद रखने वाली उसका ज़िक्र करने वाली और उसकी रिज़ा व खुशनुदी पर निगाह जमाए रखने वाली हो।

ख़ुदा ग़ाफिल लोगों से बेताल्लुक़ी :

उख़ूवत के उसूल के तहत दूसरी हिदायत यह दी गयी है कि किन लोगों से ताल्लुक तोड़ लिया जाए। किस क़िस्म के लोग हैं कि जिनका कहना न मानो, जिनके पीछे न चलो, जिनके साथ ताल्लुक़ क़ायम न करो जिनको हसरत भरी निगाहों से न देखो कि हम उन जैसे हो जायें। ऐसे लोगों की अल्लाह तआला ने तीन सिफ़तें बयान की हैं। फ़रमाया :

''किसी ऐसे शख्स की इताअत न करो, जिसके दिल को हमने अपनी याद से ग़ाफिल कर दिया है, और जिसने अपनी ख़्वाहिशे नफ्स की पैरवी इख्तेयार कर ली है और जिसका तरीक़े कार कमी और ज़्यादती पर आधारित है। (18 : 28)

एक तरफ कहा ''वसबिर'', अपने आपको ऐसे लोगों के साथ बांधो, उसके बाद कहा गया ''वलाततअ'' और उनकी इताअत न करो यहाँ इताअत न करने से सिर्फ

यही मतलब नहीं है कि कोई हमसे कहे यह करो और हम न करें, बल्कि इससे तात्पर्य यह है कि उनके पीछे न दौड़ो, उनके पीछे न चलो, उनके अन्दाज़ को इख्तियार न करो, उन्हीं को यह न समझो कि बस हमको ऐसा ही करना चाहिये। यह सब चीज़ें इताअत के अन्दर शामिल हैं।

यहाँ तीन ख़ुसुसियात बयान हुयी हैं कि जो लोग दुनिया को अपनी मन्ज़िल व मक़सूद बना लें, उनके अन्दर यह पैदा होती है। इन्सानों की ज़िन्दगी, क़ौमों की ज़िन्दगी और नज़रियों और विचारों का जायज़ा लें तो यह तीन बातें उन सबके ऊपर पूरी तरह चस्पा होगीं।

पहली यह कि उसके दिल को हमने अपनी याद से ग़ाफिल कर दिया और वह अपनी ख़्वाहिशाते नफ़्स को पूरा करने में और उनकी तकमील के पीछे पड़ गया। ऐसे फ़र्द का हर काम हदे एतदाल से गुज़र जायेगा।

क़ुरआन दिल का लफ्ज़ सिर्फ गोश्त के लोथड़े के मायनों में जो जिस्म के अन्दर खून पम्प करता है इस्तेमाल नहीं करता बलिक उस दिल के मफ़हूम में इस्तेमाल करता है जो इन्सान की शख्सियत का मर्कज़ है जहाँ उसके इरादे, उसकी ख्वाहिशात, तमन्नायें, आरज़ूऐं और हौसले परवरिश पाते हैं, या वह मुहर्रकात (प्रेरणा शक्ति) पाये जाते हैं, जिनके तहत वह अमल करता और ज़िन्दगी बसर करता है। जो दिल खुदा की याद से ग़ाफिल होता है, उसमें कहीं

खुदा के वजूद की गुन्जाइश नहीं होती। हो सकता है कि आदमी पाँच वक्त मस्जिद में चला जाए, चर्च चला जाए, सिना गाग चला जाए, तहरीर में तक़रीर में खुदा का नाम ले ले लेकिन वह चीज़ जो शख्सियत का मर्कज़ हैं जहाँ से सारी उमंगें जन्म लेती हैं तमाम हौसले व इरादे जड़ पकड़ते हैं, वह दिल अल्लाह की याद से खाली होता है। अल्लाह ताअला ने ''अन ज़िकरना'' फरमा कर निसबत अपनी तरफ की है, यानी अल्लाह से उनका दिल ग़ाफिल हो जाता है। यह नतीजा और अन्जाम है। दुनिया के पीछे पड़ने का।

इसलिये पहली हिदायत यह दी कि देखो एसे लोगों के पीछे कभी न जाना, जिनके बारे में तुमको यह महसूस हो कि उनकी शख्सियत, उनके क़ल्ब, उनके दिल व दिमाग़ और रुह में कहीं अल्लाह की याद नहीं हैं। जो यह नहीं सोचते कि अल्लाह की रिज़ा क्या है, अल्लाह की मर्ज़ी और खुशनूदी या उसकी पसन्द व ना पसन्द क्या हैं। वह सारी ज़िन्दगी की मन्सूबाबन्दी उससे आज़ाद होकर करते हैं। सुबह से शाम तक ख़ुदा से आज़ाद होकर मन्सूबे बनाते हैं, ख्वाह घर के अन्दर हों या बाहर, या कहीं भी। उनका चलना फिरना, खरीदना, बेचना, हर चीज़ इस बात से खाली होती है कि उसके अन्दर अल्लाह की मर्ज़ी क्या

है, उसकी रिज़ा किस चीज़ में है और उसकी पसन्द व नापसन्द क्या है। यह अल्लाह से इन्कार की तरफ इशारा नहीं है। यह बात खास तौर पर क़ाबिले ग़ौर है कि अल्लाह का इन्कार तो बिल्कुल दूसरी और बड़ी दूर की और बहुत बड़ी चीज़ है। अल्लाह का इन्कार बहुत थोड़े लोग करते हैं। पहले भी यही रहा है और अब भी यही हाल है। मगर (ख़ुदा की पनाह) यह सोच ज़रुर पायी जाती है कि खुदा की ज़रुरत नहीं है। ख़ुदा का कोई काम नहीं है। उसका ज़िन्दगी के अन्दर कोई मुक़ाम नहीं है। दुनिया का पैदा करने वाला कोई नहीं है। खुदा के लिये दिल में रुह में, अक़्ल में, फ़लसफ़े में, निज़ाम में कोई जगह नहीं है। (नउज़बिल्लाह) यह है नतीजा इस बात का कि दिल अल्लाह की याद से ग़ाफिल हो!

यादे ख़ुदा से ग़ाफिल दिल की दूसरी ख़ुसूसियत यह है कि उसकी सारी ज़िन्दगी की भाग दौड़ उन चीज़ों के हुसूल के अन्दर सर्फ़ होती है, जिन का तक़ाज़ा उसका दिल और नफ़्स करता है। उसके अलावा ज़िन्दगी में कोई और आला मक़ासिद और आला नस्बुलऐन ऐसे लोगो के पेशे नज़र या दिलचस्पी का बाएस नहीं होता। यह वह दूसरा मार्डल और नमूना है जिसे आदमी को बचना चाहिये।

तीसरी बात यह है कि अगर किसी की सारी भाग दौड़ सुबह व शाम सिर्फ उसी चीज़ के पीछे हो कि अपनी

ख़्वाहिशात कैसी पूरी करे तो इसका मतलब है कि वह ग़लत राह पर जा रहा है। वह एतेदाल और संतुलन की सीमा से निकल जाता है। उसकी दोस्ती हो या दुश्मनी, पसन्द हो या नापसन्द, हर चीज़ एतेदाल से बाहर होती है। जिस चीज़ को भी इख्तियार किया उसमें एतेदाल और संतुलन की सीमा से पार कर गये। समाजी ज़िन्दगी में इन्सान की समस्याओं को हल करने के लिये कोई एक हल निकाला तो हद से बढ़ गये या कोई दूसरा हल निकाला तो उस हद से बढ़ गये। इस रवय्ये का नतीजा यह निकलता है कि इन्सान बाग़ी और नाफ़रमान हो जाता है और अपने आप को ख़ुदा से आज़ाद समझने लगता है। यह इस बात का सुबूत है कि आदमी ने अल्लाह की किताब से ताल्लुक़ तोड़ लिया है और अल्लाह के सामने अपनी मोहताजी और फ़क़ीरी के एहसास से बेपरवाह हो गया है। उसने दुनिया की ज़िन्दगी को ही अपना मेयार बना लिया है और उसके पीछे दौड़ पड़ां यह तीन ऐसी सिफतें हैं जिनके बारे में कहा गया कि देखो जिस शख़्स के अन्दर, या जिन क़ौमों के अन्दर, या जिस समाज या सभ्यता के अन्दर मौजूद हों, उसको अपना माडॅल, अपना मताअ, अपना रहनुमा, अपना इमाम या लीडर न बनाओ। उनके पीछे न जाओ बल्कि अपना ताल्लुक़ उन लोगों या उस समाज के साथ

क़ायम करो जिसकी सुबह व शाम की याद का मकर्ज़ अल्लाह और उसकी रिज़ा और खुशनूदी की तलाश हो।

दावत इलल्लाह :

इन्सान को दर पेश बहुत से फ़ितने जो अन्दर और बाहर से उसके ईमान और उसके अमल को ग़ारत और बर्बाद करने के लिये उसके पीछे पड़े रहते हैं, उनसे बचने के लिये उस क़ुरआनी नुस्ख़ें में तीसरा उसूल यह बयान किया गया है कि हक़ की तरफ दावत दी जाए और दावत इलल्लाह का फ़रीज़ा अन्जाम दिया जाए। फ़रमायाः

''साफ़ कह दो कि यह हक़ है तुम्हारे रब की तरफ से अब जिस की जी चाहे मान ले और जिसका जी चाहे इन्कार कर दे।'' (18 : 28)

यानी हक़ तो वही हो सकता है जो रब ने दिया है। उसमें किसी शक व शुबहे की गुन्जाइश नहीं। उस पर हिदायत यह दी जा रही है उस हक़ को पेश करो और लोगों से कह दो कि हक़ को तसलीम करें। फिर इस बात की परवा मत करो कि कौन मानता है और कौन नहीं मानता। यह काम तो करना ही है, चाहे लोग उसको मानें या न मानें, मानना न मानना, हर आदमी का अपना काम है इसलिये कि अल्लाह ने हर एक को इख्तियार दिया है, आज़ादी दी है कि वह जो चाहे करे। दुनिया में यही इन्सान का इम्तेहान है। चुनांचे इसीलिये अल्लाह तआला ने

फ़रमाया है कि इस बात की परवा किये बग़ैर कि लोग मानते हैं या नहीं मानते, अपना काम करते चले जाइये। लोगों को क़ूबूल या रद्द करना उनकी अपनी कामयाबी या नाकामी है। आप उसके जवाबदेह नहीं हैं। इस तरह मायूसी का दरवाज़ा बन्द हो जाता है और अल्लाह की राह में जद्दो जहद करने और उसकी रिज़ा के हुसूल के लिये एक नया वलवला और जज़्बा मिलता है जो इत्मिनात और सुकून का ज़रिआ होता है।

क़ुरआन मजीद की यह आयत हमारे लिये बहुत क़ीमती हैं। आज पश्चिमी सभ्यता का हमला भी है और हर तरफ दुनिया की परसतिश भी। घरों में टी०वी० चलता है, एन्टीना लगे होते हैं, घर भी सुरक्षित नहीं और घरों में ईमान भी महफ़ूज नहीं। इन हालात में वह कौन सा तरीक़ा है, जिससे ईमान महफ़ूज़ हो सकता है? वह कौन सा तरीक़ा है जिससे हम अल्लाह के रास्ते पर क़ायम रह सकते हैं और चल सकते हैं? इन आयात में इसी मसले का हल पेश किया गया है। अगर आप यह तीन बातें यार रखें अल्लाह की किताब की तिलावत अच्छे लोगों की सोहबत और अल्लाह ने जो पैग़ाम दिया है उसे दूसरों तक पहुँचाना, तो ईमान बचाया जा सकता है।

इस नुस्खये शिफ़ा के यह तीन हिस्से ऐसे हैं जिनसे

अल्लाह तआला दुनिया में फ़ितने के ज़माने में, दुनिया परस्ती के ज़माने में हमें ईमान के रास्ते पर क़ायम रख सकता है, अगर हम उस पर चलना चाहें।

अगर आदमी शुरु से आख़िर तक पूरी सूरह ''क़हफ़'' पढ़े, कहफ़ वालों के वाक़िये से लेकर हज़रत मूसा और ज़ुल्क़रनैन के वाक़िये तक, हर एक में वह इशारे मौजूद हैं जिनको अगर आदमी पढ़ कर उन पर अमल पैरा हो जाये तो आज के दौर के बहुत सारे फ़ितनों का मुक़ाबला किया जा सकता है।

मैं अल्लाह तआला से दुआ करता हूँ कि हमें इन आयात को समझने की और उन पर अमल करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये। आमीन।